सम्पादकीय

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्मद्विनिः सृता!

श्री गीता जी जो कि स्वयं विष्णु भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई है इसको ही अर्थ और भाव सहित ग्रहण कर लेना ही कर्त्तव्य है अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन?

गीता निवृत्ति प्रधान ग्रन्थ नहीं है गीता संसार से पलायन नहीं सिखाती है वरन् कर्त्तव्य की ओर मोड़ती है। गीता कर्म प्रधान ग्रंथ है। गीता में भक्ति और ज्ञान का पृथक-पृथक संदेश अवश्य है परन्तु गीता का योग वहाँ पूर्व होता है जहाँ कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों का सहयोग होता है। यह अमूल्य ग्रंथ इस संसार के कंटकार्कीण अंधकारपूर्ण मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश स्तम्भ है जब कभी मानव मन संसार की व्यथाओं से उद्वेलित हो उठता है और संसार की भूल-भूलैया में पड़कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है जब उसे घटाटोप अंधकार में अन्य कोई मार्ग नहीं सूझता, उस समय गीता ही अपना प्रकाश देकर मानव को सही दिशा बोध कराती है।

श्रीकृष्ण का स्मरण हम करते हैं एक युग पुरुष के रूप में, श्रीकृष्ण का सारा जीवन हमारे लिये मार्गदर्शन करता है, विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने अपना आत्मबल बनाये रखा, बड़ी से बड़ी दुविधा की वेला में उन्होंने क्रोध को हावी नहीं होने दिया। युगों से मनुष्य मन के अधीन ही रहा और मन के वशीभूत होने वाले कार्य क्षणिक सुख देते हैं लेकिन युगों-युगों तक के लिये उस मनुष्य के लिये निन्दा का कारण बन जाते हैं। चाहे धृतराष्ट्र का पुत्रमोह, पाण्डवों के साथ अन्याय करवाता है और जिसकी परिणति कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने समस्त पुत्रों की बलि चढ़वाता है। चाहे दशरथ का कैकयी के प्रति मोहवश वचन के कारण राम को वनवास तो भेज देता है लेकिन स्वयं के प्राण त्याग देता है। चाहे रावण का सीता के प्रति आसक्ति उसके साथ समस्त पुत्रों सहित स्वर्ण नगरी लंका का अस्तित्व ही मिटा देती है।

वहीं कृष्ण के प्रति श्रद्धा द्रोपदी को चीरहरण से बचाता है और कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने स्वजनों को सामने देख मोह में पड़े अर्जुन को गीता उपदेश देकर युद्ध के लिये प्रेरित करती हैं। अर्जुन की कृष्ण के प्रति अटूट श्रद्धा ही धर्म युद्ध की विजय है। इसी संदर्भ में एक दृष्टांत है-

एक मनुष्य अपने घर से बहुत दूर देवी दर्शन को गया। बहुत दिनों से दर्शनों की अभिलाषा थी। मंदिर के द्वार पर पहुंचा तो प्रवासी का हृदय भर आया। साष्टांग प्राणाम् किया उसने और फूल-पत्र जो कुछ लाया था अर्पित कर दिये मूर्ति के सामने। मूर्ति को इस पर अभिमान हो गया। बोली मैं कितनी ऐश्वर्यवान् हूं जो लोग दूर-दूर से आते है और मुझे शीश झुकाते हैं।

आकाश यह सब देख रहा था। उसने कहा देवि! तुम्हारा वैभव धन्य है किंतु इतना और जान लो कि मनुष्य पूजने नहीं आया। इनकी तो आदत है कि दूर जाकर ये अपनी श्रद्धा को पूजते हैं। इनकी श्रद्धा के कारण ही तू देवी है अन्यथा तेरा कलेवर तो पत्थर से बनी प्रतिमा मात्र है।

सचमुच श्रद्धा न होती तो मनुष्य, बड़ा शून्य, शुष्क नीरस और उदास होता। तब उसकी स्वार्थ वृत्तियों पर कौन अंकुश लगाता, उसकी संकीर्णता को कौन रोकता। कामान्ध हो गया होता मनुष्य यदि वह भावनाशील न रहा होता। निचेष्ट हो जाता मानव, यदि उसके हृदय में श्रद्धा न होती। परमात्मा तो दूर वह अपने कुटुंबियों से, माता-पिता, बालकों, भाईयों से, पत्नी आदि किसी से भी सहृदयता का व्यवहार न करता। श्रद्धा है इसलिए मनुष्य जीवन, समाज जीवित है, परमात्मा जीवित है। वह लुप्त हो जाय तो क्या व्यक्ति ओर क्या समाज, मनुष्य सबको दबोच कर खा गया होता। पर बेचारा श्रद्धा का दास है उसी के सहारे जीवन की कठिनाईयों को झेलता रहता है। खुद भूखा, नंगा रहकर औरों का पालन करता है। कष्ट आप झेलता है, कमाता खुद है बांट देता है सबको। समाज के प्रति उत्सर्ग की भावना न रही होती तो मनुष्य जीवन में आनन्द भी क्या शेष बचता?

ईश्वर के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण क्या है?' स्वामी रामकृष्ण परमहंस से जब यह पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया-'इस संसार से बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है, जिससे कि ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो सके।' बात कितनी ही सरल क्यों न हो, पर इस संसार से बड़ा प्रमाण ओर कोई नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि ईश्वर है। संसार का प्रत्येक परमाणु एक निर्धारित नियम के अनुसार काम कर रहा है। यदि उस नियम में तनिक भी

व्यतिक्रम आ जाय तो विराट ब्रह्माण्ड का अस्तित्व, एक क्षण में नष्ट भ्रष्ट हो सकता है। एक कण के विस्फोट से अनन्त प्रकृति में आग लग सकती है और संसार में अग्नि ज्वालाओं की लपलपाती जिह्वा सब कुछ चट कर सकती है।

जीवन में पुरूषार्थ और भाग्य दोनों का ही अलग-अलग महत्व है, ये ठीक है कि पुरूषार्थ की भूमिका भाग्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, लेकिन इससे भाग्य का महत्व किसी भी तरह से कम नहीं हो जाता, वैदिक ज्योतिष शास्त्र में किसी व्यक्ति की जन्मकुंडली का पंचम भाव तथा पंचमेश उसके संचित किये गये कर्मों को सूचित करता है।

व्यक्ति के प्रारब्ध के बारे में उसकी जन्मकुंडली के नवम भाव तथा नवमेश की स्थिति से पता चलता है, कर्म विभाजन और उनका आधार अक्सर हम लोग सुनते आये हैं कि हमारे पिछले जन्मों का फल हमें इस जन्म में मिल रहा है, और इस जन्म के किए गए कर्मों का फल अगले जन्म में प्राप्त होगा, या फिर ये कि कलयुग में इस जन्म के फलों का भुगतान हमें इसी जन्म में प्राप्त होता है।

जो कर्म इस समय अर्थात् वर्तमान में कर रहे हैं वे क्रियामाण हैं, थोड़ी देर में यह वर्तमान काल, भूतकाल बन जाएगा तो उस समय ये क्रियामाण कर्म संचित कर्मों में तब्दील हो जायेंगे, यहां संचित का अर्थ है- इकट्ठा किया हुआ, क्रियामाण कर्म का अंत होकर वो संचित हो जाता है, और उन्हीं संचित में से जो कर्म फल देने लगते हैं उनको प्रारब्ध कहा जाता है।

ये वे कर्म हैं जिन्हें कि इन्सान अपनी १२ वर्ष की आयु के पश्चात् से जीवन के अंत तक करता है और ये केवल हमारे भाग्य, प्रारब्ध, नियति, किस्मत आदि पर अवलंबित नहीं हैं, अपितु इनके माध्यम से व्यक्ति अपने लिए अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित किसी प्रकार के भी मार्ग का अवलंबन करने को पूर्णतया स्वतंत्र है।

यहां से इन्सान की बुद्धि की स्वतंत्रता आरंभ होती है और स्वयं की शिक्षा, संगति, विवाह, आजीविका, पारिवारिक तथा सामाजिक उन्नति का दायित्व उस पर आन पड़ता है, अब चाहे वो अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे अथवा दुरूपयोग, ऋतु वो अपने दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता।

क्रियामाण कर्मों का आरंभ १२ वर्ष की आयु के पश्चात् इसलिए होता है कि इससे पूर्व की जो अवस्था होती है, उसे बाल्यावस्था कहा जाता है, और इस अवस्था में उसका स्वयं का कोई व्यक्तित्व नहीं होता, उसे वही कार्य करने पडते हैं जो कि उसके माता-पिता से प्राप्त गुणधर्म तथा उसकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति उससे कराती है।

वैदिक ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस अवस्था का पूर्णतः संचालन चंद्र ग्रह के अधीन होता है, इसलिए १२ वर्ष की आयु तक के बालक के बारे में फलकथन लग्न कुंडली की अपेक्षा चंद्रकुंडली से किया जाता है, गीता के दूसरे अध्याय के सैंतालिसवे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- हे मनुष्य! तेरा केवल कर्म करने पर ही अधिकार है, कर्म के फलों में तेरा कोई हस्तक्षेप नहीं है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मासङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात्, तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में नहीं है, तुम कर्मफलों के कारण भी मत बनो तथा कर्मों को न करने की भावना के साथ भी मत हों, कार्य-कारण का नियम एक सत्य नियम है, तो कर्मों का लेखा भी एक अमिट लेखा है, यह हिसाब पीछे से चला आता है।

इस जन्म में यह हमारे हाथ में जाता है, और जब इस जन्म में हम जीवन के इस बही खाते को बंद (मृत्यु होने पर) करते हैं, तो आगे कहीं जन्म लेने पर इसी लेन-देन से अगला हिसाब शुरू करते हैं, बस एक तरह से डेबिट-क्रेडिट चलता रहता है, जब तक कि बही खाते का लेन-देन पूरी तरह से शून्य की स्थिति (मोक्ष) में नहीं पहुंच जाता।

कर्मों के सिद्धांत की जटिलता सामाजिक कर्मों के संबंध में है, और एक जटिलता यही है कि ये कर्म अगर कार्य कारण शंखला के परिणाम हैं, कर्म कार्य-कारण के नियम की तरह एक अंधा नियम नहीं है, यह हवा, पानी, आग या ईंट पत्थर अचेतन का नियम नहीं बल्कि चेतन का नियम है।

दीवार पर ईंट फेंक कर मारेंगे तो वह अवश्य दीवार से टकराएगी, किसी इन्सान पर फेंकी जाएगी तो वह एक ही स्थान पर खड़ा रहकर चोट भी खा सकता है और अपने प्रयास से बच भी सकता है, खड़ा रहकर दीवार की तरह व्यवहार करेगा तो अचेतन के जैसा व्यवहार करेगा, एक तरफ को हट जाएगा तो चेतन के जैसा व्यवहार करेगा, इसीलिए काम्य कर्मों को बंधन का कारण कहा गया है, क्योंकि सुख अपनी अनुभूति के द्वारा पुनः वैसे ही सुख की अनुभूति करने वाले कर्म की ओर ले जाता है, इसी प्रकार दुख ऐसी विपरीत अनुभूति न हो इसे विरूद्ध कर्म कराने वाला बनाता है, इस प्रकार काम्य कर्म के अंतर्गत किये गये कर्म अपने दोनों ही परिणामों (सुख-दुःख) के द्वारा बांटते हैं, इसीलिये इन्हें बंधन का कारण कहा गया है।

मेरी चाह है कि हाथ से सत्य न जाने पाये। जिस सत्य को तलाशने और पाने के लिए मैंने कंकरीले, रेतीले मार्ग पर चलना स्वीकार किया है। वह आत्म स्वीकृति किसी भी मूल्य पर किसी भी संकट के समय डगमगाने न पाये। सत्य का साथ बना रहे क्योंकि उसकी शक्ति असीम है, मैं उसी के सहारे हिम्मत संजोये रहूंगा।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित
श्रीमती इन्दू श्रीमाली